।। ओ३म् ।।

प्रभु से विनय

हे अग्नये! तू गार्हपत्य ही नहीं, तू वैश्वानर नाम की अग्नि बन कर हमारा कल्याण करती है। तू विश्व को प्रकाशित करने वाली है, तू द्यौ में रमण करने वाली है और द्यौ से ऊर्ज्जा, तेरे प्रकाश को ले करके सूर्य प्रकाशित हो जाता है। वह सूर्य प्रकाश देने वाला है। हमारे वैदिक साहित्य में सूर्य को भास्कर कहा है। वह भासता रहता है, मग्न रहता है वैदिक साहित्य में उसे आदित्य भी कहा है। जैसे ब्रह्मचारी आदित्य, ब्रह्म में रमण करता है इसी प्रकार वह द्यौ लोक में रमण करता हुआ वह प्रकाश देता रहता है। हे अग्नि! तू वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके, हमें प्रकाश में ले चल और अन्धकार हमारे समीप न आये, क्योंकि यदि अन्धकार आ गया तो हमारे जीवन का जो अमूल्य रहस्य है वह समाप्त हो जायेगा तो आज हम उस परमपिता परमात्मा को अपना उपास्य देव स्वीकार करते हैं।

पूज्यपाद-गुरुदेव

(याग मन्जूषा - प्रवचन दिनाँक 30-7-1987)

अँक : 509 समग्र अँक : 584
वर्ष : 43 समग्र वर्ष : 49

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	3
2.	अनुक्रम		4
3.	जीवन प्रगति का मार्ग	पूज्यपाद-गुरुदेव	5-20
4.	प्राणायाम का रहस्य	पूज्यपाद-गुरुदेव	21-35
5.	नाभि के दो केन्द्र	पूज्यपाद-गुरुदेव	36
6.	दान, पुस्तकों की सूची, प्राप्ति के स्थान व सूचना आदि		37-42

चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से एवम् पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (पूर्व शृङ्गी ऋषि जी) के शुभ आशीर्वाद से प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग का आयोजन लाक्षागृह बरनावा में श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय के प्रांगण में दिनाँक 22 फरवरी, 2015 से 1 मार्च, 2015 तक बड़े हर्ष एवम् उल्लास के साथ आयोजित किया जा रहा है जिसमें आप सब अपने सम्बन्धियों व मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

श्री गाँधी धाम समिति (पञ्जी.)

शृङ्गीऋषि बेवसाईट
Website : www.shringirishi.in
Email : contact@shringirishi.in

।। ओ३म् ।।

जीवन प्रगति का मार्ग

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह रक्षक है और वह संसार का निर्माणवेत्ता है। आज परमपिता परमात्मा का विज्ञानमय जो यह संसार है, इसके ऊपर हमारा अनुसन्धान होना चाहिए अथवा इसके ऊपर हमारा मनन और चिन्तन होना चाहिए। जैसे परमपिता परमात्मा इस संसार का रचयिता है और अनुशासन करता है। इसी प्रकार यह मानव रूपी जो पिण्ड है, पंच-महाभूत इसमें दृष्टिपात आते हैं। हम इसके ऊपर प्रायः अनुशासन में, महत्ता में परणित होना है जिससे हम इस पिण्ड के द्वारा ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जान सकें। क्योंकि जब तक हम पिण्ड और ब्रह्माण्ड का समन्वय नहीं कर देते, हम संकीर्णता में परणित रहते हैं। तो हम योगी कैसे बनेंगे? हम योग की प्रतिभा और परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान किस प्रकार जान सकेंगे? तब तक हम नहीं जान सकते, जब तक हमारा जीवन अनुशासित नहीं होता और अनुशासन में परणित हो करके हम याज्ञिक-रूप से इस परमपिता परमात्मा के इस अनुपम जगत् को दृष्टिपात नहीं करेंगे।

महर्षि अथर्वा का चिन्तन

मेरे पुत्रो ! मुझे बहुत सी वार्ताएँ स्मरण आती रहती हैं। तुम्हें बहुत पुरातनकाल में निर्णय देते हुए यह भी कहा था एक समय बेटा !

ब्रह्मा के पुत्र 'अथर्वा' अपने आसन पर विद्यमान थे। वह प्रातःकालीन अपने जीवन को उस परमपिता परमात्मा की अनुपमता से सन्धि करना चाहते थे। ब्रह्मा के पुत्र 'अथर्वा' जैसे ही विद्यमान थे और वह सन्धि करने के लिए तत्पर थे। मेरे प्यारे ! देखो, ब्रह्मा 'व्रण-केतु' हरितत्त उनके द्वार पर आ पहुँचे। हरितत्त ने ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से कहा 'महाराज ! आप क्या कर रहे हैं?' महर्षि अथर्वा ने कहा कि महाराज मैं अपनी सन्धि करने के लिए आया हूँ। क्योंकि जहाँ से मेरा बिछुड़न हुआ मैं उसी से मिलान करना चाहता हूँ। प्रत्येक प्राणी के हृदय में एक वेदना जागरूक रहती है। क्योंकि जिससे मानव का विच्छेद हुआ है उससे वह सन्धि करना चाहता है, उससे वह मिलन करना चाहता है। वेदों का अध्ययन करना चाहता है, वाणी के ऊपर अनुशासित होना चाहता है केवल मिलन के लिए, केवल वह अपनी सन्धि के लिए।

मेरे पुत्रो ! अब अथर्वा से यह कहा कि महाराज ! **वेद का अध्ययन क्यों किया जाता है?** तो वह ऋषि कहता है, ''ज्ञानाकृत वृत्ति-देवाः त्रिवर्धाः त्रिविधान् पठयतिः।'' मेरे प्यारे ! अथर्वा ने ये कहा कि 'त्रि-पापों' के लिए और 'त्रिविद्या के' लिए। मेरे पुत्रो! 'त्रि-विद्या' क्या है?-ज्ञान, कर्म और उपासना। जब मानव सन्धि करना चाहता है, तो विद्या के द्वारा ही चाहता रहता है। उत्कृष्ट इच्छा बनी रहती है कि मैं तीन के ही द्वारा, 'त्रिविद्या' के द्वारा मैं प्रभु से मिलन करूँगा। उपासना के द्वारा अन्तिम छोर है 'उपासना'। तो मेरे पुत्रो! वह क्यों कर रहा है? क्योंकि उससे उसका विच्छेद हो गया है। क्योंकि विच्छेद नहीं होता तो मिलन की इच्छा नहीं होती।

सुषुप्ति के परमाणु

एक मानव विज्ञान में जाना चाहता है। क्योंकि नाना प्रकार की उस प्रभु के द्वारा एक माला बनी हुई है, लोक-लोकान्तरों की जो एक माला बनी हुई है निर्मित हो रही है। वह माला ही इस पिण्ड में भी विद्यमान हो रही है। तो मुनिवरो ! माला के ज्यों-ज्यों अंकुर जागरूक

होते रहते हैं, त्यों-त्यों लोकों की आभा उसके मस्तिष्क में आती रहती है। वह वैज्ञानिक रूपों में परणित हो जाता है। यदि हमारे इस मानव शरीर में चन्द्र, सूर्य नहीं होंगे, अदिति नहीं होंगे, तो हम तो कल्पना भी किसी काल में नहीं कर सकते। कल्पना बाह्य-जगत् से आन्तरिक जगत् में, आन्तरिक जगत् के जो सुषुप्ति में मानो जो परमाणु सुषुप्ति में पहुँच गये हैं, उनको वह जागरूक कर लेता है।

मेरे पुत्रो ! आओ ! आज मैं तुम्हें उसी आसन पर ले जाना चाहता हूँ। आज मैं मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम पर तुम्हें पुनः से ले जाने के लिए आया हूँ। बहुत पुरातन काल की वार्ताएँ हैं। जब बेटा! ऋषि मुनि अपने आसन पर विद्यमान हो करके ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ते रहे हैं। उनकी उड़ान कितनी विचित्र रही है। उनकी जो उड़ान है वह इस पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक नहीं। अन्तरिक्ष से ही नहीं, वह जो उड़ान है वह पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एक उड़ान हो रही है। क्या हम इस पिण्ड को जान करके इस ब्रह्माण्ड को जान सकते हैं? अथवा ब्रह्माण्ड में हम बाह्य अपनी प्रवृत्तियों को ले जा करके, आन्तरिक जगत् में उनको दृष्टिपात कर सकते हैं।

देवता कैसे बनेंगे

मैंने बहुत पुरातन-काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि हम देवता बनना चाहते हैं। प्रत्येक मानव की देवता बनने की उसकी उत्कट इच्छा बनी रहती है। कोई भी प्राणी संसार में दैत्य बनना नहीं चाहता। प्रत्येक देवता बनना चाहता है। अब वह देवता कैसे बनेगा? मेरे पुत्रो ! वह महर्षियों ने वर्णन किया है। आचार्यों ने कहा है कि हम देवता कैसे बनेंगे? हम ऋषि कैसे बनेंगे? हम योगेश्वर कैसे बनेंगे? हमारा जीवन अनुशासित हो जाय। ब्रह्माण्ड के ऊपर हमारी संशय बनी न रहे। क्योंकि प्रत्येक मानव कल्पना करता रहता है। संशय अपने मनों में रहती है। क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु को संशयात्मक रूप में दृष्टिपात करता है। घृणात्मक दृष्टिपात करती है, और वह घृणा और वह संशयात्मक दृष्टि हमारा जीवन न बनने देती है।

बेटा! इसीलिए हमें योग की आवश्यकता होती है। हम योगी कैसे बनें? किसी के प्रति घृणात्मक हमारा चिन्तन न हो। हम अपने में अपने को समाधान करने वाले हों-ऐसा हमारा और ऋषि मुनियों का बेटा! अपना-अपना मन्तव्य रहा है, अथवा उनकी चिन्तन करने की यह शैली रही है।

महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज का चिन्तन

मुनिवरो! देखो महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज और सुगुण वृत्तकेतु ऋषि महाराज, शमभानुक ऋषि इत्यादि बेटा ! देखो, जब वे अपने आसन को नहीं त्याग रहे थे, और वे वेदमन्त्र स्मरण आ रहे थे उड़ान उड़ने वाले। क्योंकि देखो मानव का चिन्तन और मनन है। क्योंकि वह मन्त्रणा करता रहता है। चिन्तन मनन करता रहता है। उड़ान उड़ता रहता है। कैसी उड़ान बेटा ! अपने में बाह्य जगत् को, बाह्य जगत् को अपने में इस चिन्तन में ऋषि लगा हुआ है।

मेरे पुत्रो ! ऋषियों ने जब कहा कि महाराज ! आज अपने आसन को नहीं त्याग रहे हो भगवन् ! मेरे प्यारे महर्षि मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं कि महाराज मैं इसीलिए नहीं त्याग रहा हूँ, मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार की वार्ताएँ ''गृहि ग्रहण अस्थित्त दस्यतो'', समाहित हो रही हैं। और मेरे मस्तिष्क में यह वाक्य आ रहा है कि हम देवता कैसे बनें? क्योंकि दैत्य भी हमारे समीप हैं। प्रजापति की दो ही संतान हैं दैत्य और देवता। हमारे मानव शरीर में भी दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं। सूर्य है, दैवी, देवत्व है। आज देवता बनने की हमारी उत्कट इच्छा बनी हुई है, और हम देवता बनना चाहते हैं। जिस उद्गाता को मैं अपनाना चाहता हूँ, उसी उद्गाता को, यह दैत्य छेदन कर देते हैं। असुर छेदन कर देते हैं। तो हे प्रभु ! मैं इसीलिए अपना उद्गाता निर्मित करना चाहता हूँ।

मैंने अपने चार उद्गाता निर्मित किए हैं और चारों उद्गाताओं को दैत्यों ने छेदन कर दिया है। जैसे वाणी को मैंने उद्गीत बनाया,

उद्गाता बनाया तो उद्गान, जब गाने लगा तो वाणी भी पापी स्वार्थता में परणित हो गई। उसको दैत्यों ने छेदन कर दिया है। हे प्रभु ! मैंने जब 'घ्राण' को अपनाया तो गन्ध और सुगन्ध में परिवर्तित हो गई है। हे प्रभु ! मैंने जब चक्षुओं को अपनाया तो जहाँ वे यज्ञिक ही यज्ञिक दृष्टिपात करना था, वहाँ उसमें स्वार्थपरता आ गई। अच्छी सुन्दरता अपने में धारण करने लगे। तो उसमें भी स्वार्थपरता आ गई। हे प्रभु ! मैंने जब श्रोत्रों को अपनाया तो वे भी पापाचरणों में परणित हो गए। अब मेरी यह जो यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में मेरा अन्तरात्मा विद्यमान हो करके यजमान बना हुआ है। मैं उसका उद्गाता बनना चाहता हूँ। अब मेरे समीप कौन उद्गाता रह गया है जिससे मैं प्रार्थना करूँ?

मन

मेरे प्यारे ! वेद का आचार्य मन्त्रणा करता हुआ और वह 'मन' के समीप पहुँचता है। और मन से कहता है, **हे मन ! तू मेरी इस यज्ञशाला का उद्गाता बन।** तू यज्ञमयी धारा जिसमें मैं इस संसार को संसार-रूपी यज्ञशाला को मैं दृष्टिपात करने लगूँ। और यज्ञशाला-रूपी जो यह मेरा मनस्तत्त्व वाला शरीर है इसको मैं इस बाह्य यज्ञशाला में परणित कर दूँ। मेरे पुत्रो ! जब वेद का आचार्य यह उच्चारण कर रहा तो मन ने कहा, ''प्रियतम्''। मैं तुम्हारा उद्गाता बनूँगा। मन उद्गाता बन गया। जब मन उद्गान गाने लगा। परन्तु उद्गान गाते हुए उन्होंने यह कहा मेरे जो ''कर्मस्य प्रही'' है वे कर्म मेरे, तुम्हें सब इन्द्रियों को भोगाचरणों में परणित होंगे। मेरे पुत्रो ! देखो यह स्वीकार हो गया, परन्तु अब मन जब उद्गीत गाता रहा। उद्गान गाता रहा। यह मन सर्वत्र है। देखो ! जितना भी भू-मण्डल है। जितना भी यह ब्रह्माण्ड है, इस ब्रह्माण्ड में, वह गतिशील उसकी गाथा गाने लगा। उसका उद्गीत गाने लगा। अब उसका उद्गीत गाते-गाते बेटा! **उद्गाता के द्वारा स्वार्थपरता आ गई।**

अब मुनिवरो ! **स्वार्थपरता क्या?** जहाँ वह शुद्ध संकल्प कर रहा था। कि यह संसार तो मेरा महान् देवत्व है। जहाँ वह केवल शुद्ध संकल्प

कर रहा था। क्या संकल्प कर रहा था? मैं आज 'अदिति' को जानना चाहता हूँ। मैं चन्द्रकेतु में जाना चाहता हूँ। इस ब्रह्माण्ड में जो यह माला बिखरी हुई है इन मनको को मैं एकत्रित करना चाहता हूँ। माता वसुन्धरा के गर्भ में परणित हो करके वसुन्धरा के खनिज को अपने में लाना चाहता हूँ। वह जो लोक-लोकान्तरों में जितना खनिज है, उसको मैं संकल्पबद्ध करना चाहता हूँ। जहाँ यह शुद्ध संकल्प हो रहा था। यह विचार रहा था कि यह जो मन है, यह ''मनस्तम् ब्रह्मलोकाः वृत देवाः।'', यह व्रत है। यह व्रत कर रहा था कि यह जो पृथ्वी है, यह जो ब्रह्माण्ड है। इसमें जो रसों का स्वादन गति कर रहा है, रसों का जो विभाजन हो रहा है यह जो विभक्त क्रिया है मेरे ही द्वारा है और विभक्त हो रहा है।

मेरे पुत्रो ! देखो ''विभक्ताम् बृहिः वृताम्।'', वह विभक्त कर रहा था। तो यह शुद्ध संकल्प हो रहा था। सुसंकल्प होते-होते बेटा ! उसमें स्वार्थपरता आ गई है, और स्वार्थपरता आते ही वह अशुद्ध संकल्प करने लगा। अब जहाँ जिस वस्तु का वह याज्ञिक रूप से दृष्टिपात कर रहा था, उसको वह संकीर्णता से संकल्प करने लगा, विकल्प करने लगा। वह विकल्प करता हुआ ऐसी धारा पर जहाँ संकल्प कर रहा था, वहाँ अशुद्ध धारणा उसमें आने लगी। स्वार्थपरता आते ही दैत्यों ने, दैत्यों की प्रवृत्ति ने मन को छेदन कर दिया। मन के ऊपर आक्रमण कर दिया, और आक्रमण हो करके मन का छेदन हो गया। मन के छेदन होते ही बेटा ! यहाँ सात्विकता समाप्त हो गई। यहाँ उद्गातापना समाप्त हो गया। वे उद्गीत गाना समाप्त हो गया। जो प्रभु की महिमा का गुणगान गा रहा था। जो प्रत्येक वस्तु में प्रभु को ही दृष्टिपात कर रहा था। जो प्रत्येक परमाणु में प्रभु को दृष्टिपात करता हुआ उसमें चित्रण कर रहा था, वहाँ वह अपने में उसे चेतन में छेदन कर दिया चेतना से। वह चेतना में जड़वत् होने लगा। परिणाम मेरे पुत्रो ! जहाँ प्रकाश ही प्रकाश था, वहाँ अन्धकार होने लगा। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में तो रात्रि होती ही नहीं। प्रभु के राष्ट्र में तो सदैव प्रकाश की प्रकाश रहता

है। तो मुनिवरो ! प्रकाश में रह करके वह अशुद्ध संकल्पों से रात्रि में, अन्धकार में परिवर्तित होने लगा। जब अन्धकार आ गया, तो बेटा ! आलस्य आने लगा और जब आलस्य आ गया तो प्रमाद आ गया। प्रमाद आने के पश्चात् अब अन्धकार आने के पश्चात् मेरे पुत्रो ! वही मृत्यु की सन्धि बन गई। मृत्यु आने लगी। मेरे प्यारे ! जहाँ मृत्यु ही नहीं थी, शुद्ध संकल्प में मृत्यु ही नहीं थी अशुद्ध संकल्पों में मृत्यु उसके समीप आ गई। अब मृत्यु क्या, अन्धकार आ गया, अज्ञान आने लगा।

मेरे पुत्रो ! अब विचार-विनिमय होने लगा, अब मैं किसको उद्गाता बनाऊँ? यह मन जो मेरे प्यारे ! संसार में जितनी भी विभाजन क्रिया हो रही है। चाहे वह परमाणु रूप में चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में हो, चाहे वह मानव की प्रवृत्तियों में हो, चाहे मुनिवरो ! अदिति किरणों के द्वारा क्यों न हो। चाहे वह चन्द्रमा की कान्ति में क्यों न हो। चाहे वह ध्रुव की धाराओं में क्यों न हो। नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर रूपों में क्यों न हो। यह सब विभक्त क्रिया इस मनस्तत्त्व की मानी गई है। यह मन इसमें विचरण कर रहा है। हमारे यहाँ इस मन को विश्व भान (समष्टि-मन) कहते हैं। **विश्व-भान जो मन हैं विश्व का विभाजन कर रहा है।** लोकों में ''एकागृति देवाः हिरण्यम् वृहीः लोकाः।'', बेटा ! यह परमात्मा का जो हिरण्यमयी गर्भ है, उसमें जो विभक्ता दृष्टिपात आ रही है वह मनस्तत्त्व के कारण दृष्टिपात आती रहती है। तो मेरे पुत्रो ! उस विभाजन क्रिया में हम संसार की आभा को दृष्टिपात कर रहे हैं।

आओ मेरे पुत्रो ! **मन दैत्यों से छेदन हो गया।** यह मन बड़ा विचित्र है। इस मन के ही कारण बेटा ! संकल्प और विकल्प के द्वारा हम एक सूक्ष्म वस्तु को विशाल निर्मित कर लेते हैं, और विशालता को हम सूक्ष्मता में दृष्टिपात करते हैं। जब विशेष प्राण के द्वारा, विशेष मन के द्वारा जाते हैं, तो वहाँ हम संकीर्णवत में परणित हो जाते हैं। विश्वभान मन के द्वारा पहुँच जाते हैं। मन ही है जो संसार की प्रत्येक वस्तुओं को धारण करने वाला है।

एक राष्ट्र को हमने दृष्टिपात किया है। उस राष्ट्र का सूक्ष्म-रूप बन करके मानव के अन्तःकरण में, चित्त में विद्यमान हो जाता है। अब **चित्त के भी दो प्रकार के स्वरूप माने गये हैं।** एक चित्त ब्रह्माण्ड में रहता है एक चित्त बेटा ! मानव के पिण्ड में रहता है। इस पिण्ड के चित्त का और बाह्य चित्त का, जब दोनों का समन्वय हो जाता है। तो मुनिवरो! बाह्य और आन्तरिक दोनों के चित्तों को जान करके प्रत्येक अंकुरों का वह ज्ञाता बन जाता है। प्रत्येक अंकुरों में अन्तर विरोध होने लगता है।

मेरे पुत्रो ! मैं चित्तों की विवेचना नहीं करूँगा। विचार यह करने के लिए आया हूँ ''योगस्यम् ब्रह्मलोकाः चित्तम् देवाः।'', मेरे प्यारे ! चित्त की नाना प्रकार की जो बिखरी हुई प्रवृत्ति हैं उनको एकाग्र करने का नाम मेरे पुत्रो ! योग कहा जाता है। उसी को याग में हमारे यहाँ परणित कहा जाता है। परन्तु **चित्त का जो भण्डार है वह मनस्तत्त्व है।** इसीलिए जब मन विकल्प करने लगता है। संकल्प को त्याग देता है। तो असंकल्प करने लगता है, तो बेटा ! वहाँ मानव की प्रवृत्ति पुनः विकृत हो जाती है। विकृतता में परणित हो जाती है। जैसे मेरे पुत्रो ! नाना प्रकार के पार्थिव-तत्त्व, पार्थिव-परमाणु एक ढेले के रूप में मानव को दृष्टिपात आने लगते हैं, विचार आता है। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा कि महाराज ! मेरा तो उद्गाता भ्रष्ट हो गया है। मेरा उद्गाता स्वार्थपरता में आ गया है। तो विचार क्या है कि मानव की जो प्रवृत्तियों में जो विचार अंकित होता है वह स्वार्थपरता में होता है। **जब इन्द्रियों में स्वार्थपरता आ जाती है, मन में स्वार्थपरता आ जाती है, तो मानव का यौगिकपना है वह समाप्त हो जाता है।** यौगिकवाद समाप्त हो जाता है।

विचार विनिमय क्या ! मेरे पुत्रो ! इस मन को विचार विनिमय करना है। ये जो मन है, यह पृथ्वी के नाना प्रकार के खनिजों को जानने वाला है। यह मन बेटा ! जो खनिजों में जो विभक्त-क्रिया हो रही है, वह मन के ही तो कारण होती है। अन्यथा नाना खनिजों

को एक ही वचन माना गया है। ''बहुवचन खानाकृतिः देवाः।'', जब हम खनिजों में जाते हैं, तो बहुवचन की उत्पत्ति होती है बहुवचन में बेटा ! मनस्तत्त्व विद्यमान रहता है। यदि मनस्तत्त्व नहीं रहेगा तो बहुवचन का इस पृथ्वी का कारण ही नहीं बनता। यह मन के द्वारा बना रहता है। तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो ! ''एकोः की भृष्यतम्।'' हम इस मन के विचार, मन के ऊपर मनन करना प्रारम्भ करते हैं।

मन को उद्गाता बनाएँ

आओ मेरे पुत्रो ! विचार विनिमय क्या? अब इस मन को जानने के लिए; मन को अपना उद्गाता बनाएँ। जब उद्गाता का छेदन हो जाता है, असुरों से छला जाता है। तो पुनः इसका शोधन कर लेना चाहिए। यह जो पिण्ड बना हुआ है। यह पिण्ड केवल मन के ही कारण बना हुआ है। हम पिण्ड रूप में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते हैं। हम जब याज्ञिक रूप के स्वरूप से दृष्टिपात करते हैं तो मुनिवरो ! इसको हम परमाणुओं में, इसको हम आभा में दृष्टिपात करते हैं।

माता के गर्भस्थल में निर्माण होता है। परन्तु परमाणुओं का संकलन होकर परमाणुओं के पिण्ड का निर्माण होता है। वह जो निर्माण हो रहा है वह भी मनस्तत्त्व के कारण हमें दृष्टिपात होता है। परन्तु जब मन उद्गाता बन जाता है, उद्गीत गाने लगता है तो वहाँ भी हमें उद्गीत ही प्रतीत होता है। वहाँ भी, माता के गर्भस्थल में भी पिण्ड में ही हमें उद्गीत ही प्रतीत होने लगता है। उसमें एक भावना है, एक संकल्प है। क्योंकि मैं जब अपनी माता से यह प्रश्न करता हूँ माता तेरा जो पुत्र है, वह क्या है? तो मेरे प्यारे ! माता कहती है, यह मेरा पुत्र है। परन्तु पिता से कहते हैं, यह क्या है? पुत्र है। उस समय यह कहा जाय कि यह क्या है? क्या का कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। परन्तु दर्शन इसका उत्तर दे रहा है।

मन का संकल्प

इसका उत्तर देता हुआ दर्शन कहता है कि यह माता पिता के मन का एक संकल्प है। मेरे पुत्रो ! पुत्र क्या हुआ? पुत्र-पुत्री क्या हैं? यह माता का संकल्प है। संकल्प कहाँ से होता है? यह उद्गीत गाने वाला उद्गाता गान गा रहा था। मन के द्वारा गान गा रहा था। यह संकल्प-मात्र से बेटा! सन्तानों की सन्तान बनी। पिता की सन्तान बनी। यदि संकल्प उसके साथ नहीं होगा, तो वह माता-पिता का पुत्र भी नहीं होगा, पुत्री भी नहीं होगी। जब हम उसको संकल्प-मात्र से ही दृष्टिपात करें और जब मुनिवरो ! नए संकल्प में चले जाते हैं, तो हम जब संकल्प कर रहे थे वह संकल्प असंकल्प में परिवर्तित हो जाता है। और असंकल्प में कैसे परिवर्तित होता है? प्रत्येक मानव को यह ज्ञान है वेदों में। माता-पिता का पुत्र था। ऐसे ही मेरा भी तो संकल्प पुत्र बन करके आ गया है। वह संकल्प ही पुत्र बन करके, पुत्री बन करके आ गया है। मुझे भी उस संकल्प को ज्ञान में परिवर्तित कर देना चाहिए। जब वह ज्ञान में परिवर्तित हो जाता है मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो गया है। **अपने प्रभु के द्वारा मेरा संकल्प होना चाहिए।** अब मेरा इनमें, ममता में परणित मुझे नहीं रहना है। **मुझे केवल अपने प्रभु से मनस्तत्त्व को प्राप्त करना है।** वह संकल्प याज्ञिकवाद में परणित हो जाता है। वहाँ कर्त्तव्यों का पालन हो गया है। मुनिवरो ! कर्त्तव्यों का पालन करके, संकल्प करके बेटा ! **वही संकल्प प्रभु में जब परणित हो जाता है तो उसे हम संध्या, उसे सन्धि हम कहते हैं।**

मेरे प्यारे ! सन्धि कहाँ हुई? हम संकल्प करें। जैसे प्रभु ने यह संसार रचाया है और संसार रचाने के पश्चात् इसमें व्याप रहा है। आत्मा इसमें भोगामृत भोग रहा है। मन के द्वारा संकल्प किया जा रहा है। यदि वही प्राणी उस पुत्र-पुत्री के संकल्प में, ''मेरा'' करके कर्त्तव्यवाद में परणित हो जाता है। क्या? मेरी सेवा होनी चाहिए। मेरे मेरा संकल्प में सेवा, सेवक बने तो मुनिवरो! देखो वह सेवक, अरे ! सेवक तुम क्यों बनाते हो? यदि तुम्हें सेवक बनना है, तो प्रभु के सेवक बनो ! संकल्प

का कर्त्तव्य का पालन हो गया है और सेवक प्रभु का हमें बनना है। हम यदि ''सेवकाम् ब्रह्मलोकाः।''

मुझे एक वार्ता स्मरण आ गई बेटा ! इस संदर्भ में। मुनिवरो! तुम्हें स्मरण होगा **'चाक्राण' ऋषि की वार्ताएँ।** चाक्राण ऋषि बेटा ! एक समय जब अकाल हो गया। संवत् अकाल होने के पश्चात् मुनिवरो ! पत्नी के प्राणांत होने लगे अन्न के बिना। अन्न प्राप्त नहीं हुआ तो बेटा! चाक्राण ऋषि से देवी कहती है कि महाराज ! मेरा मन और प्राण दोनों इस शरीर से जा रहे हैं, मेरा प्राणान्त होने वाला है। प्रभु ! मेरी रक्षा करो ! क्योंकि रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। उन्होंने रक्षार्थ के लिए गमन किया और एक हाथीवान! ''उर्ध्व मादुताकृतियों'', देखो ! माह से वह पान कर रहा था। महर्षि चाक्राण ने ''भिक्षाम् देहि'', जब भिक्षा को प्राप्त करने लगे कि महाराज ! मुझे भिक्षा दो ! अब देखो वहाँ उस हाथीवान् ने कहा कि महाराज ! ले लो ! मेरे तो ये अन्न अशुद्ध हैं। उन्होंने कहा अशुद्ध नहीं आप मुझको भिक्षा में दे दो। तो बेटा! भिक्षा प्रदान कर दी। उन्होंने कहा महाराज ! ''जलम् गृहाण'' उन्होंने कहा जल की इच्छा नहीं। तुम शूद्र हो। यह शूद्र कह करके बेटा ! वे मौन हो गये। हाथीवान् बोले कि महाराज ! मैं इस रहस्य को जान नहीं पाया हूँ। आपने मुझे जल के लिए शूद्र कहा है और मेरे अशुद्ध अन्न (माह-माष-उरद) को जो मैं पान कर रहा था उसके लिए आपने शूद्र नहीं कहा है। यह मैं नहीं जान पाया हूँ? उस समय **चाक्राण ऋषि कहता है कि महाराज ! जिस वस्तु को मैं स्वतः प्राप्त कर सकता हूँ उस वस्तु में दूसरों का, मैं आश्रित न बनूँ।** यदि मैं दूसरों का आश्रित बन गया तो मैं और वह दोनों 'शूद्रता' में परणित हो जाएँगे। अन्न का अभाव है। अन्न संवत् अकाल से समाप्त हो गया है। अन्न से प्राणों की रक्षा होगी, इसका अभाव है। अभाव की मैं भिक्षा कर रहा हूँ। इस जल का अभाव नहीं, इसकी भिक्षा करने की मुझे आवश्यकता नहीं है। मेरे प्यारे ! चाक्राण ऋषि कहता है हाथीवान से कि हाथीवान इसीलिए मैंने तुम्हें शूद्र कहा है। क्योंकि तुम्हारी प्रवृत्ति

में यह आ गया कि यह मेरे आश्रित हैं। जो अपने को आश्रित स्वीकार करता है। मेरे पुत्रो ! वेद के ऋषियों ने उसे शूद्र कहा है।

आचार्यों ने कहा कि कोई किसी के आश्रित नहीं होता बेटा ! दर्शनों की दृष्टि में, यौगिक दृष्टि में जब योग को तत्पर करते हैं तो मेरे प्यारे ! वहाँ शूद्रपना उसमें आता है जहाँ जो सुयोग्य है, कर्म कर सकता है। मेरे प्यारे ! योगाचर कर सकता है वह दूसरों का आश्रय लेता है। तो मेरे पुत्रो ! वेद के आचार्यों ने, ऋषियों ने उसे शूद्र कहा है। तो मुनिवरो देखो ! यह उच्चारण करके हाथीवान् की शंका निवारण हो गई। और चाक्राण ऋषि उस माष (माह, उरद) को ले करके गए। मुनिवरो ! अपनी पत्नी के द्वार पर पहुँचे। पत्नी से कहा, देवी ! यह लीजिए। इनको पान करने से उसके प्राणों की रक्षा हो गई।

मेरे पुत्रो! देखो विचार विनिमय क्या है? इसीलिए **हमें दूसरों के आश्रित होने का भी संकल्प नहीं करना चाहिए।** क्योंकि वह विकल्प बन जाता है। उस विकल्प को हम क्यों करें? वह तो हमारा जो संकल्प हमारे आश्रित हो रहा था। आज हमारा देखो हम स्वतः उसके आश्रित हो गए। तो यह हमारा अशुद्ध संकल्प हो गया है। इसीलिए बेटा! देखो ! वेद के आचार्यों ने ऋषि, मुनियों ने कहा है कि **'हे मानव ! तू इस मनस्तत्त्व को जानने के लिए, इस मन से शुद्ध संकल्प से उद्गाता बन। उद्गान गाने वाला बन।**

मेरे प्यारे ! देखो, महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज उद्गान गा रहे थे। उद्गाता बन रहे थे। मुझे स्मरण आता रहता है। जब बेटा ! वेद के ऋषि विद्यमान हो करके विचार विनिमय करते थे कि क्या हम मन को उद्गाता बना रहे हैं। **बेटा ! यही उद्गाता वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में समाहित हो जाता है।** वैज्ञानिकों के द्वार पर चला जाता है। इसी संकल्प के द्वारा विज्ञान के परमाणुओं में गति करने लगता है। जब परमाणुओं में गति करने लगता है; तो मुनिवरो ! ''विचाराम् गृत देवम् ब्रह्मलोकाः।।'', वह जब इस एक-एक परमाणु को ले करके, वह एक-एक परमाणु में संसार का चित्रण, और चित्र को दृष्टिपात करता

है। **अपने संकल्प को भी वह उस चित्र में, वह उस परमाणु में दृष्टिपात करता रहता है।**

मेरे प्यारे ! एक मानव ने संकल्प किया है और वह संकल्प प्रभु के आश्रित होने का है; प्रभु के द्वार पर जाने का है। बेटा ! उसका परमाणु उसका चित्र बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। गति करता हुआ वही मनस्तत्त्व को जानने वाला ऋषि योग में परणित हो करके, जो परमाणुओं का चित्र बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहा था उसके ऊपर मनस्तत्त्व उदान वायु पर आत्मा विद्यमान हो करके ''शरीराम् ब्रह्मलोकाम् मृत्यु देवाः।'' वह जो मानव का शरीर था। उसी संकल्प के द्वारा वायु को उड़ान उड़ने लगता है उस मन के द्वारा। **क्योंकि वह जो चित्त विद्यमान होता है वह बाह्य चित्त में गति करने लगता है।**

मेरे पुत्रो ! वह जो विज्ञान है। इन परमाणुओं को जान करके वह चित्र पृथ्वी पर आता है। अब संकल्प करता है कि मुझे उन संकल्प के द्वारा मुझे उन परमाणुओं को एकत्रित करना है। अब परमाणु एकत्रित करता है। कहीं वृक्षों की पत्तियों, वृक्षों की जो धाराएँ हैं, उनमें जो परमाणु उत्पन्न होते हैं, उनको एकत्रित करता है। कहीं अग्नि के द्वारा जो धाराएँ उद्बुद्ध हो रही हैं, उनको एकत्रित करता है। एकत्रित करके उनको एक स्थूल में लाता है। स्थूल में ला करके चित्रावलियों का निर्माण कर देता है। और चित्रावलियों का निर्माण करके, उन चित्रावलियों का जिनमें पिता-महापिताओं के दर्शन होते हैं। जिनमें वह जो संकल्प किया हुआ हमारा अन्तरिक्ष में गति कर रहा था। उस अन्तरिक्ष में से उस मन के संकल्प को उस मनस्तत्त्व के संकल्प से जिस यन्त्र का निर्माण किया है, वही यन्त्र अन्तरिक्ष में से उन परमाणुओं का जो रथ बना हुआ था, जो आकार बना हुआ था। मेरे पुत्रो! देखो जो रथ बन करके चित्त में चित्रण हो रहा था। वह चित्त में चित्रण हो करके वह चित्र बन करके अन्तरिक्ष में से उसमें उस मन की आभामयी वैज्ञानिक संकल्प के द्वारा बेटा ! यन्त्र में वह चित्र दृष्टिपात होने लगता है।

मेरे प्यारे ! यहीं तक नहीं। जो एक स्थली पर विद्यमान हो करके वायु में चित्र को त्याग देते हैं। यह ही नहीं वेद के ऋषियों ने तो यहाँ तक जाना कि हमने संकल्प किया बाल्यकाल में और हम वैज्ञानिक मन के द्वारा संकल्प करके वह बाल्यकाल में जो हमारा संकल्प किया हुआ था वह वायु मण्डल में, चित्त में विद्यमान है। वह बाह्य चित्त से वह अपने जैसे मस्तिष्क में चित्रण होता रहता है ऐसे ही यन्त्रों के द्वारा वह चित्रण होता रहा है।

मेरे पुत्रो ! मैं तुम्हें विज्ञान के युग में ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार क्या? मेरे पुत्रो ! देखो, मन के लिए हम उद्गाता बनें। हम मन को उद्गाता बना करके उद्गीत गाने वाले बनें। जब तक मन को उद्गीत नहीं बनाएँगे, तब तक मेरे प्यारे ! हम आभा में परणित नहीं होंगे। हम परमात्मा के पुत्र परमात्मा के आश्रित नहीं बनेंगे। हम संसार के असंकल्प करते हुए हम जो हमारे आश्रित थे, इससे पूर्व भी हम उसके आश्रित बनना चाहते हैं। यह हमारी प्रतिभा है। यह हमारे लिए घृणितता है। यह हमारे लिए घृणित संकल्प है पुत्रो।

मेरे पुत्रो ! अहा ! विचारना क्या है? कि इस मन के द्वारा हम, वायु-मण्डल में गति करना चाहते हैं। जैसे यह मन उड़ान उड़ता है। कैसे उड़ान उड़ता है? जैसे एक मानव ने एक राष्ट्र को दृष्टिपात किया है, और सर्वत्र राष्ट्र का भ्रमण उसने किया है; और वह राष्ट्र का जो चित्र बन करके अन्तःकरण के चित्त में विद्यमान हो गया है। चित्रण हो गया है उसका अब उसको हम कहीं विद्यमान हो करके शान्त मुद्रा में हम उस राष्ट्र का, जब स्मरण करते हैं, उस स्मरण शक्ति में, चित्त में ही उसका चित्रण हो रहा है, और मन उड़ान उड़ रहा है। इसी प्रकार वैज्ञानिक जब विज्ञान के युग में प्रवेश करता है, वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रवेश करता है, तो वह उड़ान उड़ता है यह पृथ्वी-मण्डल है। मुझे पृथ्वी-मण्डल से बाह्य उड़ान उड़नी चाहिए। वह 'मंगल' में उसकी उड़ान मन की मन के संकल्प के द्वारा जाती है और मंगल से उड़ान उड़ करके बेटा ! वह नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की माला बना लेता है। वहाँ का

जितना भी क्रियाकलाप है वहाँ की जितनी भी धाराएँ हैं; चित्रणता है यह मन यौगिक बन करके उसका चित्रण कर लेता है। और चित्रण करके वह बाह्य जगत् में मन के संकल्प के द्वारा वह यन्त्रों का निर्माण करता है।

बेटा ! मुझे स्मरण आता रहता है। मैंने कई काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा है कि महात्मा ध्रुव देवर्षिः नारद मुनि के द्वारा योगाभ्यास करते थे। मानो संकल्प करते थे। तो ध्रुव-यान की कल्पना बन गई। ध्रुव-यान की मन से कल्पना बनी। मन को ध्रुव-मण्डल में ले गए और ले जा करके उसके पश्चात् ध्रुव-यान का निर्माण किया।

मेरे पुत्रो ! **विचार क्या? संकल्प हमारे यहाँ इतना उदार और महान होना चाहिए। इस संकल्प के द्वारा हम दूसरों के आश्रित न बनें। क्योंकि संकल्प से हम प्रभु के आश्रित बनते हैं,** और असंकल्प से बेटा ! जो हमारा ही संकल्प है, हम दूसरों के आश्रित बन जाते हैं, तो यह तो प्रियता नहीं है, यह कोई मानवता नहीं है। विचार विनिमय क्या? ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया। आज मैं उस अनुसन्धान-बेला में जाना नहीं चाहता हूँ। आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, शुद्ध-संकल्प वादी बनते हुए, यह जो संसार सागर हमें दृष्टिपात आ रहा है इससे हमें पार होना है। हमें अपने जीवन को याज्ञिक बनाना है।, याज्ञिकवाद में परणित होना है।

कल का विचार बेटा ! हमारा यह रहेगा कि हम मन को कैसे शुद्ध-संकल्प में ला सकते हैं? कैसे हम किसके आश्रित हों? मन को भी जो उद्गाता बना है और उद्गाता बन करके अशुद्ध विकल्प से दैत्यों ने इसको छेदन कर दिया है। और कल तुम्हें मैं यह निर्णय दूँगा—यौगिक क्षेत्रों में पहुँच करके हम इस मन को त्याग करके हम किसको अपना उद्गाता बनाएँ? जिसे उद्गाता बनाने से हमारा उद्गीत पवित्र बन जाए।

बेटा ! आज का विचार विनिमय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा का संकल्प करते हुए मानो ज्ञान, कर्म, उपासना का अहा !

अपने में धारणा को अपनाते हुए हम इस मन के द्वारा मन को उद्गीत बना करके, उद्गाता बना करके इस शरीर रूपी जो यज्ञशाला प्रभु ने रची है इस शरीर रूपी यज्ञशाला को बेटा! हम कैसे इसमें सफलता को प्राप्त कर सकते हैं? मेरे प्यारे ! यह जो पिण्ड है, मानो शरीर है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है। इसमें उद्गान गाया जा रहा है, उद्गीत गाया जा रहा है। यजमान सांत्वना से श्रवण कर रहा है। ब्रह्मा इसको निरीक्षण कर रहा है। मैं कल तुम्हें जो उद्गाता विशेष है उसे उद्गाता बनाने से हम छिन्न-भिन्न कर सकते हैं असुरों को। असुरों को विजय करने की वार्ता हम कल प्रगट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त।

आज का वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि प्रत्येक मानव योगी बनना चाहता है। योगी वह उसी काल में बनेगा, जब बेटा ! हमारा उद्गाता पवित्र होगा। हमारा संकल्प पवित्र और हम उस संकल्प को याज्ञिकवाद में ले जाएँगे। क्योंकि संकीर्णवाद में तो पापाचरण है और शुद्ध संकल्प में, पवित्रता में, उसमें प्रकाश है। मृत्यु नहीं होती। रात्रि जब नहीं होती तो मृत्यु भी नहीं होती। और जब मृत्यु नहीं होती तो बेटा ! अज्ञान भी नहीं होगा तो बेटा ! रात्रि भी नहीं होगी। क्योंकि ज्ञान में, प्रभु के राष्ट्र में बेटा ! रात्रि नहीं होती। जब रात्रि नहीं होती तो सदैव प्रकाश रहता है वहाँ मृत्यु का भय प्राणी को बना नहीं रहता। बेटा ! यह आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा, उसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त होने जा रही है।

वेद पाठ----------

अच्छा भगवन्!

आनन्दित रहो!

दिनाँक : 20 अप्रैल, 1979

समय : प्रातः 7 बजे

स्थान : आर्य समाज, शक्ति नगर, अमृतसर

।। ओ३म् ।।

प्राणायाम का रहस्य

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह प्रभु ज्ञान और विज्ञानमय माना गया है। उस मेरे देव का ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त माना गया है कि उसको कोई मानव सीमाबद्ध नहीं कर सका है। जब हम विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो बेटा ! विज्ञान अनन्तवत् दृष्टिपात होने लगता है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को सीमाबद्ध करने वाला हो। क्योंकि सीमा से रहित है उसका विज्ञान इसीलिए प्रत्येक मानव के लिए उस परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में यह विद्यमान है। प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि हम परमपिता परमात्मा का जो विज्ञान है वह इतना अनन्त है कि हम उसको जानने के लिए उत्सुक बनें। और हमारे हृदय में उल्लास होना चाहिए कि हमें प्रभु के राष्ट्र में प्रभु की प्रतिभा को जानना चाहिए। उसका मन-मग्न हर्ष-ध्वनि करना चाहिए, करता रहे। जब तक उस प्रभु के आनन्द में अपने में आनन्दित नहीं होता तब तक मेरे प्यारे ! प्रभु को हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हम मग्न होते रहें, हर्ष ध्वनि करते रहें।

मनस्तत्त्व की महिमा

आओ मेरे पुत्रो ! आज मैं तुम्हें ऋषियों के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि-मुनि विद्यमान हो करके प्रभु के ज्ञान और विज्ञान

की उड़ान उड़ते रहे हैं। मेरे पुत्रो ! इससे पूर्व काल में अथवा आज के वेदमन्त्रों में भी मनस्तत्त्व की महिमा आ रही थी, जिस मन के द्वारा मानव शुद्ध संकल्प करता है और संकल्पवादी बन करके वह अपने हृदय के अन्धकार को दूर कर देता है। उद्गीत गाता रहता है। तो मेरे पुत्रो ! उद्गीत गाना एक गान है। यह मनों से गाया जाता है। जब मानव का मन उल्लास में होता है, उस समय यह हर्ष ध्वनि करता है। तो मेरे पुत्रो ! विचार आता रहता है, प्रभु के राष्ट्र का प्रभु के विज्ञान का।

मेरे पुत्रो ! मैं तुम्हें ऋषि मार्कण्डेय के आश्रम की चर्चाएँ कर रहा था। आज भी पुनः से वह वार्ताएँ स्मरण आ रही हैं। मार्कण्डेय ऋषि यह विचारने लगा कि मैंने अपने देववत् को पाने के लिए इस मन से प्रार्थना की कि तुम मेरे उद्गीत बनो, उद्गीत गाने वाले बनो। तो मन उद्गान गाता रहा। परन्तु यह मन जहाँ शुद्ध संकल्प कर रहा था वहाँ अशुद्ध संकल्प भी आ गया। इससे मुझे विदित हुआ कि दैत्यों ने इसे छेदन कर दिया, अतः इसका उद्गीतपना समाप्त हो गया है। जैसे यज्ञशाला में विद्यमान हो करके उद्गाता उद्गीत गान रूपों में गाता रहता है, इसी प्रकार मेरी जो यह शरीररूपी यज्ञशाला है मेरा जो उद्गीत गाने वाला मनस्तत्त्व था वह अशुद्ध हो गया है। उसमें निःसंकल्पता आ गई है।

मेरे प्यारे ! ऋषि इस सम्बन्ध में और भी उड़ान उड़ने लगा। यह मन ही है जो नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों को हमें प्रत्यक्ष करा देता है। यह मन ही है जो जब तक उद्गीत गाता रहता है, तो हिंसक प्राणी भी ''अहिंसा परमो धर्मः'', को अपना करके चरणों की वन्दना करने लगते हैं। जब ऋषि ने यह विचारा कि इससे तुम सफलता को प्राप्त नहीं होगे तो देव प्रवृत्ति के ऊपर संकलित होता रहा। देवासुर संग्राम भयँकर रूप धारण करता रहा। देवता जब सांत्वना को प्राप्त हुए तो यह विचारा कि मन के उद्गीत बनाने से ही केवल हम सफलता को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। क्योंकि हमें यौगिकवाद को पाना है, हमें देववत् को प्राप्त करना है।

असुर छिन्न-भिन्न हो गये

मेरे पुत्रो ! सर्वत्र देवता अपना सुगठित विचार करके, चिन्तन करके, वे प्राणत्व के द्वार पर पहुँचे, 'प्राण' देवता से कहा, हे प्राण देवता ! आप हमारे उद्गीत बनो, उद्गाता बनो। मेरे प्यारे ! प्राण ने उस वाक्य, उस देवताओं की पुकार को स्वीकार कर लिया। जब देवताओं की उस पुकार को स्वीकार कर लिया, तो उद्गीत गाने लगा। वह उद्गान गाने लगा और उद्गान गाता रहा तो असुरों को यह प्रतीत हुआ कि अब सब देवता 'प्राण' के समीप पहुँचे हैं हमें विजय करना चाहते हैं। असुरों ने अपना एक कर्म बनाया और वह प्राण को भी छेदन करना चाहते हैं। परन्तु प्राणों से जैसे मिलान हुआ तैसे ही मेरे प्यारे! देखो जैसे एक पृथ्वी से उत्पन्न वज्र पर जो आक्रमण किया जाता है तो आधा तक वस्तु छिन्न-भिन्न हो जाती है। इसी प्रकार दैत्य, असुर बेटा ! छिन्न-भिन्न हो गए। उसका उद्गीत चलता रहा। उद्गान गाता रहा। देवता प्रसन्न हो गए।

प्राण-शक्ति

देवताओं ने, देव प्रवृत्तियों ने बेटा ! मन को अपना उद्गीत बनाया और मन के पश्चात् प्राण को जो उद्गीत बनाया तो बेटा! उन्हें यह प्रतीत हो गया कि अब असुर तुम्हारे समीप नहीं आएँगे। असुर प्रवृत्तियाँ समाप्त हो गईं। मेरे पुत्रो ! अब विचार आता रहा। अब मार्कण्डेय ऋषि महाराज प्रातःकाल से 'ईशत्व' का विचार विनिमय करते रहे कि यह जो प्राण है, यह उद्गीत गान गाने वाला है। ये जितनी ध्वनियाँ जो हो रही हैं संसार में, ये प्राण की ही हो रही हैं। इस 'ध्वनि' पर हमें विचारना है कि इस प्राण शक्ति के द्वारा इस **संसार की प्रत्येक वस्तु प्राण-शक्ति प्रदान करके ऊर्ध्व-गति को प्राप्त हो जाती है।** जितना भी यह जड जगत् हमें दृष्टिपात आता रहा है, यह सब प्राण के द्वारा हमें दृष्टिपात आ रहा है। मानो योग में वायु गति कर रहा है। उसमें जो ध्वनि है वह प्राण की ही प्रतीत हो रही है।

वाणी

प्राण-शक्ति जो उद्गीत गा रही है, उस उद्गीत को जो असुरों से वाणी छेदन हो गई थी। अब वाणी को बेटा ! मृत्यु से विजय करना चाहता है। प्राण जब उद्गीत गाता हुआ वाणी जब मृत्यु के समीप जाने लगी जब वाणी प्राणों के समीप आई, तो ऋषि ने यह विचारा कि यह वाणी किसका स्वरूप है? तो वाणी अग्नि का स्वरूप प्रतीत हुई। जहाँ से इस शरीर में, इस पिण्ड में वाणी बन करके दैत्यों से, असुरों से, पाप से छेदन हो गई थी वही वाणी के ऊपर जब यौगिक ऋषियों ने चिन्तन करना प्रारम्भ किया, उसके ऊपर मन्थन करना प्रारम्भ किया प्राण-शक्ति के द्वारा तो मेरे प्यारे ! इसमें अग्नि का स्वरूप प्रतीत होने लगा। वह वाणी ही तो इस पिण्ड में बेटा! अग्नि बन करके वास कर रही है। इसीलिए इस वाणी के द्वारा अग्नि अपने में स्वरूप को धारण कर लेता है। जब वाणी बाह्य जगत् में विचरण करने लगी तो अग्नि बन गई। अग्नि प्रतीत होने लगी।

याज्ञिक-वाणी

ऋषि ने यह विचारा कि यदि हम इस वाणी को प्राण के द्वार पर ले करके चलते हैं तो दैत्य इसे छेदन नहीं कर सकते थे। देखो वाणी मृत्यु से पार हो गई। वाणी मृत्यु से कैसे पार हो गई? बेटा ! जब वाणी ही वाणी थी तो यह दैत्यों के द्वारा छेदन हो गई। परन्तु यह जब अग्नि का स्वरूप बन गया, याज्ञिक स्वरूप बन गया, तो मेरे प्यारे ! दैत्य इसे छेदन नहीं कर सका, और याज्ञिक यह बन सकती है प्राण शक्ति के द्वारा। तो मेरे प्यारे! देखो प्राण देवताओं का उद्गीत गाने लगा, देवताओं के लिए गाने लगा। यह वाणी मानो पवित्रत्व को प्राप्त हो गई। इसीलिए मेरे पुत्रो ! प्रत्येक मानव को यह विचार-विनिमय करना है कि हमें अपनी वाणी को पवित्र बनाना है। और **वाणी को हम प्राण शक्ति के द्वारा पवित्र बनाएँ।** क्योंकि केवल वाणी को असुर छेदन कर सकते हैं और यदि यह वाणी प्राण शक्ति के द्वारा अग्नि का स्वरूप बन जाती है तो बेटा ! इसे दैत्य छेदन नहीं कर सकते।

इसीलिए वाणी गाती रहती है। शब्द गतियाँ करते रहते हैं। कैसे वह मेरा प्यारा प्रभु वैज्ञानिक है पुत्रो ! शब्दों की रचना कण्ठ के द्वारा हो रही है। शब्द के चित्र बन करके अन्तरिक्ष में प्रवेश कर रहे हैं। प्रत्येक शब्द ध्वनि के साथ में। ध्वनि पर ध्वनि गति कर रही है प्राण शक्ति के द्वारा। वह कैसी पवित्र ध्वनि है कि मानव के कण्ठ को सजातीय बना देती है। मानव के कण्ठ को महान् और पवित्र बना देती है। तो मेरे प्यारे! देखो ''कंठम् ब्रह्मेः वृत्ताम् देवत्यौ लोकाः''। मेरे प्यारे मुनिवरो! देखो, जितने भी ऊपर वाले लोक-लोकान्तर हैं उन पर बेटा! उस ऋषि का अधिपत्य हो जाता है। उनके ऊपर वह अनुशासन करने वाला बन जाता है। जो बेटा! वाणी को याज्ञिक बना करके, वाणी का यौगिक बना करके प्राण के द्वारा प्रत्येक वाणी का शब्द प्राण के सहित होगा, तो बेटा! जितने भी अग्नि तत्त्व प्रधान लोक-लोकान्तर हैं उनके ऊपर वह ऋषि अनुशासक हो जाता है, अनुशासन करने लगता है।

बेटा! मैं आज तुम्हें ऋषि बनाने आया हूँ। ऋषि मानव कैसे बनता है? मेरे पुत्रो! ऋषि अपने-पन को देख करके, अपने में ही दृष्टिपात करता है। वह अग्नि को अपने में ही दृष्टिपात करता है और जब अग्नि को अपने में ही दृष्टिपात करता है, तो जब वाणी प्राण से सुशोभित हो करके गति करती है तो बेटा! इस वाणी को पान करने के लिए मृगराज इसके समीप आ जाते हैं। सर्पराज इसकी ध्वनि को श्रवन करने लगते हैं। मृगराज आते हैं, सिंहराज आते हैं वे ध्वनि को श्रवण कर रहे हैं।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय **महर्षि भृगु मुनि महाराज** अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि भृगु एक समय 'साम-गान' गाने लगे। जब वाणी से साम-गान गाने लगे, ध्वनियाँ गतियाँ करती रहीं। तो मुनिवरो! देखो जहाँ जब वाणी का इतना प्रभाव, इतनी ओजस्वी पवित्र वाणी द्वारा जब परमाणुओं की गति होने लगी। तो मेरे पुत्रो ! वहाँ सर्पराज आ करके उस ध्वनि को श्रवण कर रहे थे। वहाँ कोई भी मनुष्य नहीं था। कौन? प्राणी आ गए। वहाँ भयँकर वनों से प्राणी

उस ऋषि-वाणी को श्रवण कर रहे थे। ऋषि 'सामगान' गा रहे थे। प्राणों से मिली हुई, प्राणों से सम्बन्धित हुई यह वाणी गतियाँ कर रही थी। उसके परमाणु चल रहे थे। सर्पराज श्रवण कर रहे थे। मेरे पुत्रो! देखो सिंहराज आ करके हिंसा को त्याग करके अहिंसा में परणित हो गए। उसे किसी प्रकार का भी भय 'भयक्षणकृति कृति देवाः' किसी प्रकार का भी भय नहीं रहा। वे अपने में निर्भयता को प्राप्त हो गए।

निर्भयता उसी के समीप आती है जो इस वाणी को प्राण के साथ में गति कर देता है। प्राण के साथ एक सूत्र में इसको मन की भाँति, एक माला बना करके और उस प्राण रूपी सूत्र में जब यह पिरो दिया जाता है, तो बेटा! उसे किसी प्रकार का भी भय नहीं होता। इसलिए मेरे पुत्रो! देखो मानव को चाहिए कि वह वाणी में इतना महान् बन जाए। वह वाणी देवता बन करके देखो ! हम ऋषित्व को प्राप्त हो जाएँ। ऋषि वही होता है, मुनि वही होता है। जैसे बालक अशुद्ध उच्चारण कर रहा है वह भी माता-पिता को प्रिय होता है और शुद्ध उच्चारण कर रहा है, प्राण से पिरो रहा है। मेरे पुत्रो ! वह भी निष्कपट और निःस्वार्थवादी जो वाणी है वह माता-पिता को, गुरु-जनों को कितनी प्रिय होती है। इसी प्रकार मुनिवरो! देखो मुनि की जो वाणी होती है वे प्राण-रूपी सूत्र में पिरोई हुई वाणी बेटा ! बालक वस्तु को प्राप्त करा देती है।

आओ मेरे पुत्रो ! आज मैं अपने विचारों को दूरी में न ले जाऊँ। विचार-विनिमय क्या? हम इस वाणी को जो प्राणों से गति कर रही थी, प्राणों से इसका मिलान हो रहा था। अब वाणी पवित्रता को प्राप्त हो जाती है। इसके पश्चात मेरे पुत्रो ! देखो, जब वाणी को अग्नि जान लिया ऋषियों ने कि **यह वाणी तो अग्नि का स्वरूप है,** यह वाणी हमारे तक ही सीमित नहीं है। यह वाणी तो अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली है चित्रों को ले करके। यह वाणी तो मानो अग्नि ही अग्नि, अग्नि स्वरूपा बन जाती है। वाणी पर संयम करने वाला अग्नि-तत्त्व प्रधान वाले जितने भी मण्डल हैं, जितने भी लोक हैं, उनके ऊपर उसका अनुशासन हो जाता है।

घ्राण-शक्ति

विचार विनिमय मेरे पुत्रो ! क्या? कि आगे चल करके ''अप्राण अब्रहिः लोकम् देवत्यम् लोकत्रहिः''। मुनिवरो! देखो अब प्राण ने वाणी को जब मृत्यु से दूर कर दिया, तो इस ध्राण को अपने समीप लाने का प्रयास किया और प्राण के द्वारा कहा कि ''ध्राणप्रभि वृताम् देवाः मृत्युः''। हे मृत्यु से छेदन होने वाली ध्राण ! आ, तू मेरे समीप आ। तो मुनिवरो! देखो ध्राण जब प्राण से छेदन हो गई, तो वह जो पाप से छेदन, दैत्य, असुरों ने की थी, वे असुर दूर चले गए। वे असुर नहीं रहे। वह दुर्गन्ध नहीं रही। बेटा! देखो ध्राण-शक्ति में सुगन्धि ही सुगन्धि आने लगी। वह जो हम दुर्गन्धि इसको स्वीकार करते थे, वह भी याज्ञिक-रूप में सुगन्धि में परिवर्तित हो गई और वह कैसे परिवर्तित हुई? तो विचारा ऋषि मुनियों ने कि हम योगी बनना तो चाहते हैं, परन्तु हम ध्राण के द्वारा योगी केवल नहीं बन पा सकते, जब तक इसके साथ में प्राण का समन्वय नहीं होगा। जब तक प्राण इसके समीप नहीं आएगा।

मेरे पुत्रो ! इसीलिए ऋषिजन प्राणायाम करते हैं। बेटा ! देखो, नाना प्रकार के प्राणायाम होते हैं। जैसे **1. चन्द्र आकृति 2. अदिति-आकृति और 3. स्वातम् ग्रहीवां 4. ग्रहीवाण-स्यहिः।** मेरे पुत्रो ! ये नाना प्रकार के प्राणायाम के स्वरूप माने गए हैं और प्राणायाम जब तक नहीं होता मुनिवरो! जब तक प्राण और ध्राण दोनों का समन्वय न हो। दोनों का जब समन्वय हो गया तो बेटा! देखो वे योगीजन विद्यमान होकर के अपने एक आसन पर सबसे प्रथम वे मूलाधार में प्रवेश करता है। 'मूलाधार' में प्रवेश करता हुआ मुनिवरो! देखो 'नाभि-चक्र' में जहाँ वायु वेग से गति कर रहा है। उसके पश्चात् वह स्वाधिष्ठान चक्रों में गति करता हुआ, अष्ट-चक्रों में ये प्राण, ''अब्रहि लोकाः'' जो मानो ध्राण के द्वारा ही इस मानव शरीर में जो नाना क्षेत्र बने हैं। बेटा ! इनसे वह दूर हो जाता है। उनसे वह मृत्यु को विजय करता हुआ वह वायु स्वरूप बन जाता है। जब वायु स्वरूप बन जाता

है तो **कुम्भाकृत** इत्यादि प्राणायाम् के द्वारा 5. **स्वाकृति**, 6. **अस्वातन** प्राणायामों के द्वारा स्थूल में ही जब यह जान लेता है कि हम यह जो प्राण शक्ति है इसका मिलान ध्राण के द्वारा हो गया है। तो बेटा ! देखो, यह मृत्यु से विजय हो गया है। मृत्यु से विजयी हो करके और इसका उत्थान होने लगता है।

ऋषि कहते हैं कि जैसे वाणी के द्वारा अग्नि थी ऐसे ही ध्राण में जो विचरण करने वाली ध्राण शक्ति में देखो ! इसका नाम वायु है। वायु स्वरूप है। यह केवल ध्राण ही नहीं है। प्राण से जब इसका समन्वय हुआ तो यह वायुस्वरूप बन गया और कैसा वायु-स्वरूप बना है? मेरे पुत्रो! देखो प्राणों का मानो परमाणुओं का आवागमन, आदान-प्रदान होने लगा जिससे मानव की जीवन शक्ति गति करने लगती है और मृत्यु से विजय होने लगता है। मेरे पुत्रो! देखो इसीलिए प्राणायाम करने वाला जो ऋषि होता है, प्राणायाम करने वाला जो पुरुष होता है वह मृत्यु से पार हो जाता है। क्योंकि मृत्यु ही तो मानव को, संसार को रुलाने वाली है, मानव को रुलाने वाली है। जब प्राण से इसका मिलान होता है तो ''घृणात्वाः कृतम् वायुः।'' मेरे प्यारे ! यही ध्राण जो स्थूल में बन करके रहती थी। वह बाह्य जगत् में इस ब्रह्माण्ड में बेटा ! वायु बन करके गति कर रही है। बेटा! वायु ही है जो मुनिवरो! देखो पृथ्वी के परमाणुओं को अन्तरिक्ष में ले जाती है। जब ग्रीष्म ऋतु आती है अग्नि का मिलान होते ही यह जल के परमाणुओं को अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत करा देती है। जब वृष्टि काल आता है तो वायु का गीलापन हो करके तेज वायु आदित्यों का ही तेज हो करके प्राण शक्ति के द्वारा वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

वे ही पृथ्वी के कण, वे ही जलों के परमाणु मेरे प्यारे ! जो अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो गए थे। वह समुद्रों के जलों का उत्थान किया वायु ने। अग्नि के द्वारा अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो गया है। **वही तो वृष्टि का मूल कारण है।** उस वृष्टि के द्वारा ही नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। उससे ही खनिज उत्पन्न होने लगता है।

उसी के द्वारा मेरे पुत्रो ! मानव का जन-जीवन ऊँचा बन जाता है। **परिणाम क्या है वाक्य उच्चारण करने का? कि आज हम इस ध्राण को जानने वाले बने।** यह ध्राण के द्वारा जब प्राण का समन्वय होता है तो मानव को मृत्यु नहीं आती वह मृत्यु से पार हो जाता है, वह ऋषि बन जाता है। वह प्राणेष्टि बन जाता है।

मेरे पुत्रो ! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा ! **महर्षि मुगदल मुनि महाराज** अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि मुगदल मुनि महाराज जब वेदों का अध्ययन कर रहे थे, गान-रूपों में गान गा रहे थे। उसके पश्चात् वह अन्तर्मुखी हो करके प्राणों के द्वारा, ध्राण के द्वारा, प्राणायाम जब करने लगे। दोनों मानो ध्राण का और प्राण का तब समन्वय हो गया। वे प्राण अपान के द्वारा, उदान के द्वारा, समान के द्वारा, व्यान के द्वारा जब इन प्राणों की एकता में हो करके, जब प्राणायाम होने लगा तो मुनिवरो! देखो ध्वनि को श्रवण करने वाला बेटा ! वायु देवता बन गया। जब श्रवण करने लगा तो मेरे पुत्रो देखो। जो वह प्राणायाम करते थे, तो प्राणायाम करते ही भयँकर वनों से आ करके सिंहराज जैसे आसन पर ऋषि विद्यमान थे ऐसे उसके आंगन में मृग और सिंहराज विराजमान हो करके वे जो उनकी सूक्ष्म तरंगे प्राण के द्वारा गतियाँ कर रही थीं हिंसक प्राणी उनके समीप से अपने में ग्रहण कर रहे थे। वे क्यों कर रहे थे, क्योंकि प्रत्येक जो श्वांस आ रहा था वह श्वांस की गति प्राण से पिरोयी हुई थी और वह प्राण प्रत्येक-प्राणी-मात्र में कार्य कर रहा है। प्रत्येक वाणी उससे गुंथा हुआ है, एक-एक परमाणु गुंथा हुआ है, एक-एक लोक-लोकान्तर गुंथा हुआ है। मुनिवरो! देखो नाना सूर्यों की किरणें आती हैं। वे नाना किरणें भी उस प्राण से ही हमें गुंथी प्रतीत होती हैं। इससे प्राणीमात्र को जीवन प्राप्त होता है।

आओ मेरे पुत्रो ! मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ? मैं महर्षि मुगदल मुनि महाराज का जो सूक्ष्मतम रहस्य है, जो प्राणशक्ति के द्वारा आता है, ध्राण के समक्ष प्राणायाम के द्वारा आता है। इसको प्राणी भी कैसे

अपने में धारण कर लेते हैं। अपने में ही अपने को दृष्टिपात करने लगते हैं। तो आओ ! मेरे पुत्रो ! जब प्राण देवता ने मृत्यु को, ध्राण को भी पार कर लिया, दूर कर लिया। ध्राण को जैसे दूर किया तो मुनिवरो! देखो ये ध्राण इस मानव शरीर में ध्राण बन करके रहता है। और जब याज्ञिक बन करके बाह्य-ब्रह्माण्ड में बेटा ! यही वायु बन करके रहता है। और नाना प्रकार के रूपों में बेटा ! जब स्वरूपों में यह गति करता है कौन? प्राण। मानो वायु-रूपी अब श्वांस दस रूपों में प्राण के साथ में गति कर रहा है।

तो मेरे प्यारे ! गृहस्थी उसी के द्वारा वेद में गति करने वाला और **शीतली प्राणायाम** करने वाला अपनी क्षुधा को, अपनी तृष्णा को समाप्त कर लेता है। आज मुनिवरो! देखो एक योगी विद्यमान है। जल उसके समीप नहीं है, और उसे तृषा आ रही है। जल की पिपासा बनी हुई है, तो मुनिवरो! वह शीतली प्राणायाम करता है; अन्तरिक्ष में से, वायु में से जल के परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं। जल के परमाणुओं से बेटा ! वह अपनी पिपासा को शान्त कर लेता है। इसी प्रकार मेरे प्यारे ! देखो, उसे अब क्षुधा लग रही है, ऋषि क्षुधा में परणित हो रहा है। बेटा ! प्राण के द्वारा ध्राण से मिलान करता है जो प्राण-शक्ति वायु में गति कर रही थी। वह उसकी क्षुधा को नष्ट करने वाले उन परमाणुओं को अपने में धारण कर लेता है उससे क्षुधा भी समाप्त हो जाती है।

मेरे पुत्रो ! यह आज मैं इस भयँकर वन में जाना नहीं चाहता हूँ। यह तो बेटा ! भयँकर वन है एक प्रकार का। मैं इस वायु के भयँकर वन में नहीं जाना चाहता हूँ। विचारना यह है कि ऋषियों ने यह विचारा कि **यह ध्राण तो वायु का स्वरूप है।** इसको हम अपने तक सीमित न रह करके इसको व्यापक बनाना। प्राण के साथ में मिलान करके बेटा! व्यापक बन जाती है और व्यापक बन करके ही प्राणी बेटा ! मृत्यु से पार हो जाता है।

याज्ञिक-चक्षु

ध्राण को मृत्यु से जब मिलान किया, जब उसके पश्चात् प्राण देवता ने चक्षु को अपने समीप लाने का प्रयास किया और चक्षु से कहा, आओ चक्षु ! तुम्हें मैं मृत्यु से पार कर रहा हूँ। मैं मृत्यु से तुम्हें उड़ान ले जा रहा हूँ। तो जब वह चक्षु उनके समीप पहुँचे, तो मेरे पुत्रो ! देखो, अब चक्षु के ऊपर अनुसन्धान हुआ, विचारा गया। विचारने से यह प्रतीत हो गया कि **चक्षु तो आदित्य है। चक्षु तो अदिति है।** मानो यह तो आदित्य-रूप है।

मुनिवरो ! देखो, जो लोक में, ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाश दे रहा है ऐसे ही इस मानव-रूपी यज्ञशाला में, मानव का जो यह पिण्ड है, इस पिण्ड में चक्षु ही तो सूर्य का कार्य कर रहा है। मेरे पुत्रो ! अब जब यह याज्ञिक बन गया तो प्राण का इससे समन्वय हुआ। एक मानव दृष्टिपात कर रहा है। माता को दृष्टिपात कर रहा है। पुत्री को दृष्टिपात कर रहा है। पत्नी को दृष्टिपात कर रहा है। पुत्र को कर रहा है। अपने कुटुम्ब को अपने में दृष्टिपात कर रहा है। तो मेरे पुत्रो ! जब वह दृष्टिपात कर रहा है तो उसमें ''शुद्धव्रताः''। वह दृष्टिपात करने की शुद्धता है, पवित्रता है—वे प्राणों के द्वारा है।

मुनिवरो! देखो ! उसी को जब संकीर्णता से दृष्टिपात करता है तो उसमें मृत्यु-रूप आ जाता है। संकीर्णता में मृत्यु-रूप बन गया है। मेरे प्यारे ! जब उसने याज्ञिकवाद से विचारा कि यह तो आदित्य है। यह तो सूर्य है, यह तो एक सा ही प्रकाश देने वाला है। यही सूर्य है। मेरे पुत्रो ! देखो ! कहीं खनिज का निर्माण किसी किरण के द्वारा है। किसी कान्ति के द्वारा मेरे पुत्रो ! देखो, अन्न की उत्पत्ति हो रही है। नाना प्रकार के खनिज, खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति का मूल कारण सूर्य है। इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में मुनिवरो ! ये जो चक्षु हैं ये भी एक खनिजों का निर्माण करते रहते हैं, दृष्टिपात करते रहते हैं।

मेरे पुत्रो ! जब प्राण से इसका छेदन, देखो ! प्राणरूपी क्षुब्धों ने बेटा ! जब चक्षुओं का छेदन कर दिया, तो मेरे पुत्रो ! ये चक्षु भी मृत्यु से पार हो गए। संकीर्णता समाप्त हो गई। वे जो क्षुब्ध था, वे जो पापों ने, मानो असुरों ने इसे पाप से छेदन कर दिया था। अशुद्ध संकल्प, अशुद्धता में दृष्टिपात कर रहा था। तो बेटा ! वह भी समाप्त हो गया। जब वह समाप्त हो गया, समाप्त होने के पश्चात् मुनिवरो! देखो, केवल चक्षुओं से शुभ दृष्टिपान करने लगा।

मानव की दृष्टि कहाँ चली जाती है बेटा ! ऋषि एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की, अन्तरिक्ष में जितने लोक-लोकान्तरों की माला है पुत्रो ! उसको वह दृष्टिपात करने लगता है। क्योंकि प्राण-शक्ति इसके द्वारा है। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा ! यहाँ उद्दालक-गोत्र में 'श्वेतकेतु' ऋषि हुए हैं और **श्वेतकेतु ऋषि महाराज, उनकी पत्नी 'स्वेलता'** थी। अपने एक आसन पर विद्यमान हो करके देखो ! बाह्य-याग कर रहे थे और चक्षु के प्राण से छेदन कर रहे थे तो मुनिवरो! देखो प्राण शक्ति के द्वारा एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की यात्रा कर रहे थे। चक्षु ! जब अन्तरिक्ष को दृष्टिपात कर रहे थे, तो महात्मा ध्रुव का एक यान था, जो ध्रुवमण्डल की परिक्रमा कर रहा था। तो वह मुनिवरो! देखो करोड़ों योजन की दूरी वाला यान उन्हें नेत्रों से दृष्टिपात होने लगा। अब मेरे पुत्रो ! इतना व्यापक, इतनी याज्ञिक उनकी दृष्टि बन गई केवल प्राण के छेदन करने से।

''ब्रह्मचरी कृतिग् देवत्यम् लोकाः''। मेरे प्यारे ! देखो ! ब्रह्म की चरि को चरने वाला ही तो बेटा ! प्राण-शक्ति को अपने में धारण कर सकता है। मेरे पुत्रो ! उन्होंने ब्रह्म की चरि, दोनों पति-पत्नियों को बेटा ! चालीस-चालीस (40-40) वर्ष हो गए; अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए। नेत्रों से वे प्राण-शक्ति के द्वारा इस संसार को दृष्टिपात करने लगे। मण्डलों को दृष्टिपात करने लगे। ऋषि को बेटा ! इतनी महत्ता आ जाती है, जब वह चक्षुओं को प्राण से छेदन कर देता है। मुनिवरो ! देखो। जितना भी यह मण्डल है और जितने भी देखो ! ये 'अग्नि-तत्त्व' वाले

क्या? आदित्य; जितने भी सूर्य-मण्डल हैं-ये नाना सूर्य उसे दृष्टिपात आने लगते हैं। **मुझे स्मरण है ऋषि ने यह कहा है, उद्दालक-गोत्रीय ऋषियों ने यह कहा है कि हमें नाना आकाश-गंगाएँ बिना यन्त्रों के दृष्टिपात आती हैं। उन आकाश गंगाओं में जितने सूर्य हैं, अरबों-खरबों सूर्य हमें एक ही आकाश-गंगा में बिना यन्त्रों के दृष्टिपात आते हैं।**

मेरे पुत्रो ! देखो ! ऋषि कहते हैं कि वे जो वाणी के द्वारा, शब्दों के द्वारा, अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके **जो शब्द अन्तरिक्ष में चित्रण हो रहे हैं, वे चित्रण भी** हमें अपने इस मानव-रूपी जो ब्रह्माण्ड बना हुआ है इस ब्रह्माण्ड में बाह्य-ब्रह्माण्ड को आन्तरिक ब्रह्माण्ड में जब प्रवृत्तियों को ले जाते हैं तो हमें सब दृष्टिपात होने लगता है।

मेरे पुत्रो ! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। एक-एक वस्तु का बेटा ! यह तो भयँकर वन है। पुत्रो ! आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि मुनिवरो ! देखो कौन? इस प्राण-रूपी देवता ने बेटा ! कौन से? देखो, चक्षुओं को मृत्यु से उड़ान दिया। **मृत्यु से वही तो पार होता है, जो बेटा ! संकीर्णता को त्याग देता है। मृत्यु से वही पार होता है जो याज्ञिकवाद में परणित हो जाता है।** तो बेटा ! नेत्रों को उन्होंने अग्नि अदिति बनाया और अदिति बेटा ! देखो ! ''आदित्यों ब्रह्म कृताम् देवाः।'' अब सूर्य बन करके बेटा ! यह मानव-रूपी ब्रह्माण्ड में अपना कार्य कर रहा है। अपनी प्रतिभा मानो परणित करा रहा है।

बेटा! देखो! ऋषि विद्यमान हो करके याग के जो परमाणु थे; उन परमाणुओं में उन्हें स्पष्ट दृष्टिपात आता। यह परमाणु 'द्यु' लोक को जायेगा, यह परमाणु पृथ्वी-लोक में जायेगा। मानो देखो! नाना लोकों के परमाणु थे वे याज्ञिक स्वरूप बन करके, नेत्रों को प्राण से छेदन करके नेत्र को एक मनका बना करके, प्राण-रूपी सूत्र में पिरो करके बेटा! प्रत्येक परमाणु उस ऋषि के समीप नृत्य करने लगा। जब नृत्य

करने लगा तो ऋषियों के लिए यन्त्र बनाना, यन्त्रों का निर्माण करना कोई असम्भव नहीं रहा। उन्होंने बेटा! देखो! **परमाणुवाद को जाना, किसके द्वारा? बेटा! प्राण-शक्ति के द्वारा।** मानो वे भी तो, परमाणु भी तो प्राण-शक्ति हैं। याज्ञिक-रूप में परणित हो करके मेरे पुत्रो! जितना यह ज्ञान, जितना यह विज्ञान है। चित्र बनाना; चित्रावलियों से वायु यानों में गति करना। वायुयानों का निर्माण करके ध्रुव-मंडल में जाना और भी नक्षत्रों में प्रवेश करना यह सब योगी के लिए कोई असम्भव नहीं रह जाता।

विचार-विनिमय क्या? इन प्रत्येक इन्द्रियों को याज्ञिक रूप धारण करा देता है और प्राण से इनको छेदन करा देता है। मेरे पुत्रो! ये जितने भी सूर्य आदित्य-सम्बन्धी मण्डल हैं उनके ऊपर ऋषि का आधिपत्य हो जाता है।

आओ! मेरे पुत्रो! आज मैं विचार-विनिमय क्या दे रहा था? देखो, प्राण देवता ने, प्राण-देवत्व ने चक्षुओं को मृत्यु से पार कर दिया और मृत्यु से पार होने वाला इस संसार सागर से पार हो जाता है। क्योंकि जब अन्धकार ही नहीं रहेगा; उसे बाह्य जगत में भी, आन्तरिक-जगत् में भी निर्माण में भी, परमाणुवाद में भी जब एक ही प्राण-शक्ति चेतन्य दृष्टिपात आने लगेगी। गति होता हुआ ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगता है। जब शून्य नहीं रहेगा, अन्धकार नहीं रहेगा तो मेरे पुत्रो! वहाँ मृत्यु क्यों आयेगी?

मुनिवरो देखो! मृत्यु से पार होने वाले सर्वत्र ब्रह्मवेत्ता बने। नाना ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार अपनी आभाओं में सदैव परणित होते रहे हैं। आज बेटा! मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा था। आज मैंने देखो! तीन मनकों की चर्चाएँ दीं। वेद का ऋषि एकान्त-स्थली पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ रहा है। वह याज्ञिक-रूप से इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात कर रहा है। कौन? उद्दालक-गोत्रीय ऋषि। चित्रों में, नाना प्रकार के चित्र अन्तरिक्ष में दृष्टिपात कर रहा है।

आओ मेरे पुत्रो! आज का विचार क्या कि मैंने आज केवल तीन मनकों की चर्चायें की हैं। प्राण से हमारे, ये प्राण रूपी सूत्र के तीन मनके हैं मैं दो मनकों की चर्चायें कल प्रकट करूँगा। आज का ये वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, याज्ञिक रूप से इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते हुए बेटा ! हम इस संसार-सागर से पार हो जायें। यह हमारा ही कर्त्तव्य है। **मानव का इस संसार में आने का उद्देश्य केवल अपने में अपने को जानना है।** अपनेपन में जब प्रभु को दृष्टिपात करते रहोगे और प्रभु को अपने में दृष्टिपात करते रहोगे तो बेटा ! एक समय आयेगा कि तुम इस सागर से पार हो ही जाओगे। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

वेद पाठ----------

अच्छा भगवन्!

आनन्दित रहो!

दिनाँक : 21 अप्रैल, 1979

समय : प्रातः 7 बजे

स्थान : आर्य समाज, शक्ति नगर, अमृतसर

।। ओ३म् ।।

नाभि के दो केन्द्र

हमारे यहाँ नाभि के दो केन्द्र माने जाते हैं। हमारे आचार्यों से जब यह कहा गया कि नाभि केन्द्र को इतनी विशेषता क्यों दी गयी? तो हमारे ऋषियों ने दो-दो नाभियाँ मानी हैं इस मानव शरीर की। एक नाभि ब्रह्मरन्ध्र माना है और एक नाभि उदर के मध्य माना है। परन्तु **योगिओं की जो नाभि है जहाँ अमृत एकत्रित किया जाता है वह ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है** जिससे वह सोम रस को पान करता है और जो प्राणायाम करने वाले नाभि केन्द्र में अमृत को एकत्रित शारीरिक आभा में एकत्रित करने वाले होते हैं वहाँ प्राण को एकत्रित किया जाता है। उस प्राण में शीतो प्राणायाम करके इस नाभि केन्द्र को ऊर्ध्वा में लाने के लिए वही अमृत का गमन मुनिवरो ! ब्रह्मरन्ध्र में होता है। ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वा भाग में एक सतो पिपलाद अमृत नाम का स्थान है जहाँ मुनिवरो ! सोम रस भरन हो जाता है। वहाँ अमृत एकत्रित हो जाता है। योगीजन जब इस त्रिवेणी के स्थान में गमन करके अपनी क्रीड़ा करने लगते हैं क्योंकि प्राण और मन की टुक-टुकी के द्वारा वह ब्रह्मरन्ध्र में जा करके जब पंखड़ियाँ गति करती हैं तो वह जो अमृत है वह झरना प्रारम्भ हो जाता है। झरना जब प्रारम्भ हो जाता है तो उसमें से सोम की वृष्टि होती है उसको योगीजन उस सोमरस को पान करते हैं और यह जो ब्रह्माण्ड है, लोक-लोकान्तर हैं, ब्रह्मरन्ध्र की गति होते ही पिपाद स्थान में परमाणु जब झरने लगता है तो जितना यह ब्रह्माण्ड है, लोक-लोकान्तर हैं, यह आकाश गंगाएँ हैं इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को योगी अपने मस्तिष्क में, अपने नाभि केन्द्र हृदय में मुनिवरो ! सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में समाहित कर लेता है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

।। ओ३म् ।।

स्मृति

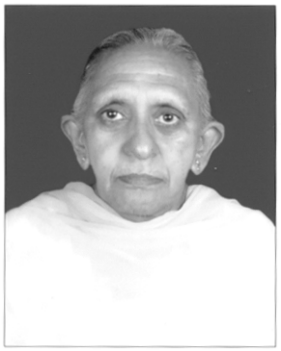

कुमारी हर्ष लता कक्कड़

कुमारी हर्ष लता कक्कड़ ब्रह्मचर्य जीवन यापन करती हुई दिनांक 8 जून, 2012 को ब्रह्मलीन हो गईं। वह अपने शान्ति प्रिय जीवन में वेदों का अध्ययन करते हुए सत्संगों व याग के माध्यम से अपनी गति को ऊर्ध्वागति में ले जाने में संलग्न रहीं। उन्हीं की पुण्य स्मृति में पूज्य माता जी, श्रीमति तृप्ता देवी कक्कड़ एवम् उनके भाई श्री चन्द्रमोहन कक्कड़ जी निवासी मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली ने 6000 रु. का सात्त्विक सहयोग, रामायण के रहस्य नामक पोथी के प्रकाशित कराने के लिए प्रदान किया है।

समिति को कक्कड़ परिवार से प्रकाशन सहयोग निरन्तर प्राप्त होता रहा है जिसके लिए समिति हृदय से बारम्बार आभार प्रकट करती है और **कुमारी हर्ष लता कक्कड़ जी** जैसी विलक्षण आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धा नम्र भाव से अर्पित करते हुए परमपिता परमात्मा से यह विनम्र प्रार्थना करती है कि ऐसी दिव्य आत्माएँ सँसार में प्रभु आती रहें जिससे कि समाज व राष्ट्र में वैदिकता की परम्परा का निरन्तर प्रचार व प्रसार बना रहे। इसके साथ-साथ समस्त परिवार के सदस्यों की दीर्घायु, सुख, शान्ति एवम् सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए प्रभु से विनय करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

।। ओ३म् ।।

श्रद्धा सुमन

स्व. नरेश चौहान

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के परम श्रद्धालु एवम् याग में अत्यन्त सक्रिय श्री तेजपाल सिंह चौहान निवासी रूढ़की, उत्तराखण्ड ने 1100 रु. का सहयोग प्रकाशन के लिये अपने पुत्र श्री नरेश चौहान की स्मृति में श्रद्धा सुमन रूप में अर्पित किया है।

श्री नरेश चौहान काफी समय से अस्वस्थ चल रहे थे और स्वास्थ्य के निरन्तर गिरने के कारण दिनाँक 16 नवम्बर, 2014 को अपने नश्वर शरीर को त्याग कर पंच महाभूतों में विलीन हो गये। श्री चौहान हाथरस पोलिटेक्निक से परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् फरीदाबाद में एस्कार्टस टैक्टर कम्पनी में नौकरी करने लगे और कुछ वर्षों के पश्चात् अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर दिया। क्षेत्र में सामाजिक व राजनैतिक गतिविधियों में भी अपना मुख्य स्थान रखते थे।

परिवार आनन्द से अपने जीवन में गतिशील कर रहा था परन्तु उनके चले जाने से परिवार को गहरी क्षति पहुँची है जिसके लिये समिति गहरा दुःख प्रकट करती है और इन विषम परिस्थितियों में भी समाज के कल्याण के लिए जो सहयोग शोकाकुल परिवार ने प्रदान किया है उसका हृदय से आभार प्रकट करती है और परमपिता परमात्मा से शोकाकुल परिवार को इस क्षति को सहन करने की क्षमता प्रदान करने के लिए प्रार्थना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	50.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	50.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	50.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	50.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	50.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	30.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
13.	देवपूजा	20.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	110.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	110.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	100.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	25.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	50.00
22.	महाराजा-रघु का याग	25.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	35.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	30.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	25.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पंच-महायज्ञ	30.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	30.00
29.	याग-मन्जूषा	25.00
30.	आत्म-दर्शन	30.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	25.00
32.	याग और तपस्या	45.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	25.00
35.	याग-चयन	25.00
36.	दिव्य-रामकथा	110.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	25.00
38.	दिव्य-ज्ञान	35.00
39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	80.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	25.00
41.	आत्म-उत्थान	30.00
42.	तप का महत्व	30.00
43.	अध्यात्मवाद	25.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	35.00
45.	वैदिक-प्रभा	30.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	35.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	30.00
50.	आत्मा का भोजन	35.00
51.	साधना	30.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 6)	60.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
56.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 7)	60.00
57.	माता मदालसा	40.00
58.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 8)	60.00
59.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 9)	65.00
60.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 10)	70.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 11)	80.00
63.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 12)	80.00
64.	मानव कल्याण की चर्चाएं	50.00
65.	प्रभु दर्शन	50.00
66.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 13)	80.00
	पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज एवम्, कर्म भूमि लाक्षागृह	10.00

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी कैसट, सी. डी. व डी. वी. डी. में

1. मधु-शान्ति पाठ।
2. मन्त्र-पाठ।
3. अमृत क्या है?
4. अक्षय-क्षीर सागर में विष्णु भगवान्।
5. इन्द्र-देवता।
6. ब्रह्म-विद्या।
7. ब्रह्मवेत्ता।
8. ब्रह्म-सूत्र की व्याख्या।
9. सँसार एक यज्ञशाला।
10. आत्मा का भोजन याग।
11. अश्वमेध-याग।
12. वाजपेयी-याग
13. पञ्च-याग।
14. त्रिकोण-याग।
15. सविता-याग।
16. स्वाहा की व्याख्या।
17. चौबीस होता से एक होता तक।
18. सुविधा न होने पर याग।
19. याग की महत्ता।
20. काला हिरन यज्ञ को ले गया।
21. याग में गऊ के बछड़े की बलि का अर्थ।
22. यजमान का रथ द्यौ-लोक में।
23. माता मदालसा।
24. राजा नल का दीपावली गान।
25. कपिल मुनि एवम् राजा सगर।
26. लँका का विज्ञान।
27. महर्षि विश्वामित्र को ब्रह्मवेत्ता की उपाधि।
28. भगवान् राम का तप
29. भगवान् कृष्ण का जीवन, बटलोई वार्ता व जयद्रथ वध।
30. महारानी द्रौपदी का जीवन, चीर हरन।
31. महाराज युधिष्ठर का राजसूय याग।
32. निर्मोही-नगरी।
33. चित्त की वृत्तियों का निरोध।
34. यम-नचिकेता सँवाद।
35. मृत्यु क्या है?

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैः-

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जिला-बागपत, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 01234-240395
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)। मो. नं. : 09412888050
3. सुश्री नीरू अबरोल, के-3, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017 दूरभाष नं. 011-26498737
5. श्री जितेन्द्र चौधरी, ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मो. नं. 9811707343
6. श्री अनिल त्यागी, सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-4165802
7. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट ऑफिस चन्द्रनगर, गाजियाबाद पिन कोड-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-2642052
8. श्री लोमश त्यागी, 106/4, पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09410452076
9. श्री विवेक त्यागी, 16ए, अशोक कॉलोनी, अल्कापुरी, हापुड, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0122-2316196
10. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। मो. नं. 09910589486
11. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110-मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) मो. नं. 09899228860, 09871367937
12. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23282088
13. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) मो. नं. 09412139333
14. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) मो. नं. 09313530505
15. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
16. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23977216

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	**1000 रुपये**
श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़, उत्तर प्रदेश	**1000 रुपये**
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	**1000 रुपये**
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद, हरियाणा	**1000 रुपये**
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	**500 रुपये**
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	**500 रुपये**
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	**251 रुपये**
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	**251 रुपये**
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात	**250 रुपये**
श्री राकेश शर्मा, विराट नगर, पानीपत, हरियाणा	**200 रुपये**
डॉ. ओ.पी. आर्य, आगरा, उत्तर प्रदेश	**125 रुपये**
श्री गुलजार सिंह, जगत पुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली	**100 रुपये**
श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश	**100 रुपये**
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	**101 रुपये**
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	**101 रुपये**

नम्र-निवेदन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने अपने प्रवचनों में वेद मन्त्रों का गान करते हुए उनकी प्रचलित भाषा में व्याख्या की है। उसी अमृत वाणी को जनकल्याण के लिए ''सँहिता'' रूप में प्रकाशित करने के लिए वैदिक अनुसन्धान समिति सभी श्रद्धालु एवम् दानदाताओं से सहयोग के लिए आह्वान करती है जिससे कि प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से ऊर्ध्वा गति को निरन्तर प्राप्त होता रहे। सहयोग की राशि समिति के बैंक खाते में स्वेच्छानुसार भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्न प्रकार से है :-

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

पंजाब नैशनल बैंक, खान मार्केट, नई दिल्ली

बैंक खाता नं. - 0149000100229389, IFSC Code – PUNB–0014900

वर्ष 43 : अंक : 509
फरवरी 2015

मूल्य :
दस रुपये

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक अनुसंधान समिति पञ्जी०
के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38,
शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।
(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

RNI No. 23889/72
Delhi Postal R. No. DL (S)-01/3220/2015-17
Licence to Post without prepayment
U (SE)-70/2012-14
POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-02-2015
Published on 5th day of the same month

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-02-2015
Published on 5th day of the same month

योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

उद्‌बोधन

विधाता ! आज हम भी अपना प्रदर्शन कर रहे हैं। हम भी अशान्ति में हैं। हमें शान्ति नहीं मिल रही है। परन्तु मनुष्य को अपनी मर्यादा कदापि भी शान्त नहीं करनी चाहिए। यह मर्यादा वह पदार्थ है जिसको त्यागने से यह संसार अशान्ति को प्राप्त हो जाता है। जब मर्यादा में चलता है तो उस समय शान्ति को ग्रहण करने वाला बन जाता है। जैसे मुनिवरो, अग्नि मर्यादा में रहती है तब तक वह संसार के लिए लाभदायक होती है, और जब मानव अग्नि को मर्यादा से पृथक् कर देता है तो उसी काल में वह संसार का विनाश करने वाली बन जाती है।

पूज्यपाद-गुरुदेव